स्वगत

प्रकाशक
रामेश्वर टाटिया स्मृति न्यास
४ शरत चटर्जी एवेन्यू
कलकत्ता २६

मूल्य—चालीस रुपया

मुद्रक
दि टेक्निकल एण्ड जनरल प्रेस
१७ क्रुकेड लेन कलकत्ता ७०० ०६९

वन्दनवार

पृष्ठ सख्या

आत्म बोध

जीवन बोध



मर्म

कहा, सब
अनकहा,
शेष अब
स्वगत रहा ।

१ मई १९८६

चिरजीव

जयचन्द लाल जी दूगड़

को

आत्म बोध

स्वगत !

सुना नहीं
पर सुन अपने से
तू अपने ही बोल !

त्याग बधिरता का यह अभिनय
कर अनुभव से बोध,
सुन्दर नहीं पर सच की पहली
लब्धि मौन प्रबोध,

पर को नहीं
तुला पर साधक
अपना आपा तोल !

दृष्टि सधे तो हो जायेंगे
निरे निरर्थक बाट,
टाँड तुला से सुन सकता पर
तुलता नहीं विराट,

जीवन हीरा
इसे गँवा मत
तू कौडी के मोल !

हटा अहम की धूलि करेगा
प्रभु मङ्गल विस्तार,
हस्त कमलवत होगा क्षण मे
सब अदीठ व्यापार

निज से यदि
साक्षात् चाहता
अन्तर के पट खोल !

व्यक्त अव्यक्त !

नहीं असंगत, संगत, शाश्वत
स्थिति का गति का द्वन्द्व !

तथ्य तथ्य है किन्तु मूल्य का
संवेदन आधार,
व्यक्त दृष्टिगत पर अव्यक्त से
जुड़े बिना निस्सार,

सुमन विटप से बद्ध, मुक्त है
किन्तु हृदय की गन्ध !

'जो है' उसकी सार्थकता है
'मैं हूँ' का चिर बोध,
यही अस्मिता परम सत्य की
ऋषि अन्वेषित शोध

नाद निनादित होता हो कर
महा छन्द में बन्द !

'स्व' जिस का सन्दर्भ वही है
सहज व्यवस्था धर्म,
रहे सृजन सापेक्ष कर्म का
भाव यही है मर्म

तभी देह का स्वेद बनेगा
मन का मधु मकरन्द !

२७ १ ८६

महागीत[1]

सन्नाय हैं दृग का
क्षितिजों के छोर,
लौटो हे बंधु
अपनी ही ओर,

थामे हैं वल्गा
सूरज की काल,
अपना ही दीपक
रख तू संभाल,

अंतर में अनहद
बाहर रव घोर,
मिलना जो 'स्व' से
आओ निज ठौर,

लौटो हे बंधु
अपनी ही ओर!

१ १८६

गत आगत!

कल सान्ध्या फिर
समय विटप से
झर जो वत्सर सुमन गया
स्वय उसी ने
नई कली बन
आज प्रात मे जन्म लिया,

सृजन विसर्जन
गति का क्रम है
नहीं यहा कुछ जीर्ण नया
भेद मुक्त जो
नहीं विमूर्छित
दृष्टि वही है काल जया!

१ १ ८६

गीतों के दूधिया फेन !

उमड़ता है
घटवत देह में
चेतना का विराट सिन्धु,
टकरा टकरा कर
लौट आती है
मन के विस्तृत तट से
विचारों की उत्तुंग उर्मियां,
समेट लेता है
फिर जिन्हें
अपनी अकथ अतलता में
हृदय का गम्भीर मझधार
पड़ा है जिस में
एकान्त निविड़ में
संवेदना की सीप में बन्द
पीर का वह अनमोल मोती
अनुभूत कर
जिस की अलौकिक आभा
आते हैं तर कर
तुम तक
मेरे गीतों के दूधिया फेन !

२१ १ ८६

द्वन्द्व हुये बासी !

चिर परिचित मेरे
द्वंद्व हुये बासी,
अभिलाषी मन अब
गृह वासी संन्यासी,

सागर का गर्जन
तट को क्या बाधा !
अच्युत वह, लहरें
पगलाई राधा,

बुदबुद से सुख दुख
पतझर मधुमासी,
आनंदित मुझ में
मेरा अविनाशी !

४ २ ८६

तथ्य तत्व !

जिजीविषा से भिन्न चेतन
स्वय का अभिबोध !

मनुज को ही है मिला
अनुभूति का वरदान,
योनि भर बस भोगते हैं
इतर सारे प्राण,
अनभिज्ञ निज अस्तित्व से
उन मे नहीं सम्बोध !

मै स्वय ही तू इसी को
व्यक्ति कर सवेद,
मूल्य रचता वेद से
अनुभूत कर निर्वेद,
तथ्य को कुछ अथ देती
तत्व की यह शोध !

कृति बनी कर्त्ता, हुआ
निरपेक्ष जब सापेक्ष,
दष्टि की इस लब्धि से ही
सृष्टि है सविशेष,
जो सचेतन सृजन उसका
मूल है प्रतिबोध !

निकष !

परख स्वयं को अभय निकष पर
तू कितना गत राग !

नहीं त्रास से मुक्त हृदय, मन
जब तक शेष कषाय,
द्वैत नहीं अद्वैत बनेगा
निष्फल अध्यवसाय,
आत्म रसायन अनुकम्पा से
होगा राग अराग !

गज कितना बल युक्त किन्तु है
लघु चींटी से भीत,
क्रिया वही जो प्रतिक्रिया से
होती स्वयं व्यतीत
नहीं देह से किन्तु वृत्ति से
होता फलित विराग !

बिना हुये भय मुक्त न होगा
विकच मैत्री का फूल
कर करुणा के जल से सिंचित
माली अपना मूल
स्वयं बनेगा विश्व जायगा
जब संवेदन जाग !

६ २ ८६

सान्त, नान्त !

व्यक्त अश भर पर अव्यक्त है
अकथ अनन्त अपार !

अनगिन को गिनने मे अक्षम
गणित सिद्ध विज्ञान
इस विराट का अनेकान्त हो
कर सकता स धान
घटाकाश से स्वत प्रमाणित
निराधार आधार !

प्रकृति पुरुष की अविति भर है
यह शाश्वत व्यापार
यही योग है सृजन भग हो
बन जाता सहार
श्रेयस्कर है सविधान वह
जो इस के अनुसार !

जो पदार्थगत चिन्तन उसका
भगुर से सम्बन्ध
स्थितियो से ही होता केवल
बस उसका अनुबन्ध
साध्य मानना मात्र देह को
कुण्ठा जनित विचार !

सम्यग् बोध!

इस चन्दन के वन मे कितने
महा विषले नाग!

नहीं प्रभावित विष से लेकिन
इस की मादक गन्ध,
इसे बाटता पवन किन्तु है
गरल स्वय मे बन्द,
अपने अपने धर्म जलद के
उर मे दाहक आग!

नहीं बरसती बूदो मे पर
उसका किंचित ताप,
शीतलता है उन मे, अपना
चपला का उत्ताप,
निज स्वभाव मे बद्ध वस्तु का
भाव नहीं है राग!

हिंसा तो है विकृत मन का
सकल्पित विक्षोभ,
सपोषण निर्दोष किन्तु है
शोषण की जड लोभ,
जागृत है जो स्व मे उसका
सम्यग बोध विराग!

२५ १ ८६

भेद मुक्त !

विदा हो रहा दिवस, दीप को
लौ का तिलक लगाओ !

दिशा दे रही व्योम थाल मे
धर कर अक्षत तारे,
कुशल क्षेम से घर को लौटें
फिर सूरज भिनसारे,
चला आ रहा तिमिर, ज्योति से
उस को पथ दिखाओ !

अतिथि मान कर इस को भी प्रिय
दो कुटिया मे आने,
यह करुणामय लाया प्रिय के
सपने साथ सुहाने,
नींद लगी विरहिन को, तम के
प्रति आभार जताओ !

विदा करेगी प्रकृति इसे भी
लगा उषा का टीका,
भेद मुक्त जो दृष्टि अमगल
करती नहीं किसी का,
मम त्वम का यह द्वन्द्व मिटे यदि
अपने मे जग जाओ !

२६ २ ८६

सापेक्ष।

सूरज के ढलने की बेला
धूप चढ़ी शिखरो पर।

नहीं पतन उत्थान स्वय कुछ
यह सापेक्षित दर्शन,
कथ कर भी जो रहे अकथ वह
शब्दातीत चिरतन,
गूज गगन मे गई हुई जब
मुरली मौन अधर पर।

जो समाप्ति है वहीं व्याप्ति है
परम गूढ यह चि तन,
कर सकता अनुभूत द्रष्टा से
जो तटस्थ वह चेतन,
मेघ बरस कर बिखरा, बूदें
नाच रही लहरो पर।

गति की ही है परिणितिया ये
भिन्न अभिन्न परस्पर,
द्वद्व मुक्त हो जीव स्वत ही
बन जाता है ईश्वर,
क्षण जो जाते बीत वही फिर
बन जाते मन्वन्तर।

२७ २ ८६

कथ अकथ !

कहे अनकहे
कितने ही सुख दुख
ऐसे ही रहे,
छूटे सब साथ हाथ
अपनों के गहे
रेतो के सपने
लहरो मे बहे
सहे अनसहे
गीत बने आसू
मैंने जो कहे !

भाषातीत !

भाषातीत समग्र इसे बस
कर सकते अनुभूत !

शब्द टोह भर देते उस की
जो है स्वयं अशब्द,
बाहर उसकी प्रतिछाया भर
वह भीतर उपलब्ध,
विगत, अनागत, आगत इस से
सापेक्षित हैं भूत !

यद्यि ह्रासमय पुद्गल लेकिन
वह अपने में ध्रौव्य,
अतिशय हो सम्बोधन उसका
न वह भव्य अभव्य,
मौन मात्र ही लक्षण उस का
जो उस से अभिभूत !

नहीं विशेषण उसका कोई
वह तो स्वयं विशेष,
शेष खोजते अज्ञ व्यर्थ ही
उस का जो निःशेष,
वह विभूति है इंगित करते
लेपित कर अवधूत !

२१ २ ८६

पूर्ण पूर्ण को भरता!

जब जीवन श्रम से थकता,
अधरों पर वंशी धरता
मैं कृष्ण कन्हैया बनता

बहती गीतों की धारा,
फिर पुलकाता मन हारा,
छूट जाता कहीं किनारा,

अंतर में अनहद बजता,
केवल आनन्द लहरता,
यह सृष्टि छन्दमय लय है,
सप्तम स्वर स्वयं प्रलय है,
हर अथ इति बस अभिनय है,

करुणा का निर्झर झरता,
सिंचित हो मूल उमगता,
खग पुन: नीड को रचता,
कर रैन बसेरा उड़ता
धरती से अम्बर जुड़ता,

फिर पूर्ण पूर्ण को भरता,
ऐसे ही सृजन संवरता,
अधरों पर वंशी धरता
मैं कृष्ण कन्हैया बनता!

२१ २ ८६

विप्रलम्भा !

स्वप्न में तू देखती वह
द्वार पर तेरे खडा है !

आज तक अपलक रही यों
जागती तू आत विरहिन,
पर नयन मे इस घडी कर
छल गई बस नींद वरिन,
कौन जो तुम को जगाये
तिमिर का पहरा कडा है !

निपट गूगी दीप की लौ
हाय, यदि वह बोल पाता
जाग बेसुध पिय गये आ
स्नेह से तुम को जगाती,
है धरी कुजी निकट पर
वज्र सा ताला जडा है !

जा रहा है चिर प्रतीक्षित
यह विरल सयोग का क्षण,
देख कर पद चिन्ह कुररी
सा करोगी करुण क्रन्दन,
विप्रलम्भा तुम रहो कुछ
योग हो ऐसा पडा है !

२२ २ ८६

मन्दिर का दीप !

चिन्मय के मंदिर मे मेरा
मृण्मय दीप जले है !

मै उस से आलोकित हू या
यह मुझ से आलोकित ?
किया किसी ने अर्पित मुझको
या मै स्वयं समर्पित ?

कहो स्नेह श्रद्धा से पीछे
या उस से पहले है ?

प्रश्न यही उत्तर दो प्रतिमे
या दे मुझ पुजारी,
समाधान जो देगा उस को
मानूगा उपकारी,

विभा भवन मे किन्तु अधेरा
फिर क्यों हृदय तले है ?

तम करता है ज्योतित, निष्प्रभ
करता मुझे सवेरा,
पवन प्राण यह सत्य, पवन ही
किन्तु मरण है मेरा,

चुप भी रहो सीख यह मेरे
उतरे नहीं गले है !

:६

अंतरयामी !

तुम्हें चढ़ाऊँगा मैं प्रतिमे
कुछ काँटे कुछ फूल !

करते रहे पुजारी अब तक
चन्दन का ही लेप,
किन्तु करूँगा मैं माटी से
प्रियतम आज प्रलेप,

किया चाहता सम्बोधित मैं
श्रद्धा को जो भूल !

जो समग्र है, पर समग्र से
तू उस का अभिव्यक्त
स्वयं रचित मूल्यों का आग्रह
केवल है अविभक्त,

वह अनुयावक कैसा है जो
नहीं जानता भूल ?

जो विभक्त है भक्त नहीं वह
उस की पूजा जाप
इसी लिये कि ले लें उसका
प्रभु अपने सिर पाप,

छल से होगा अंतर यामी
कभी नहीं अनुकूल !

२३ २ ८६

प्रार्थना !

है नहीं शब्द से
यदि जुडी साधना !
मात्र है आत्म छल
वचना प्रार्थना,

मर्म मे पठ तू
कर परम चिंतना,
जायगी सहज बन
चेतना वन्दना !

८६

सुख दुख!

जैसे सुख को सहज मानता
वैसे दुख को मान!

अगर चाहता मुक्ति द्वंद्व से
मन को कर निर्द्वंद्व,
दिवस निशा से महाकाल का
यद्यपि है अनुबन्ध,

परमहंस वह दोनों के प्रति
उसका भाव समान!

पूरब पश्चिम मात्र कल्पना
भ्रम है दिखता व्योम,
जो होता प्रतिबिम्बित दृग की
अक्षमता तम तोम,

तू अपना ही लक्ष्य और है
तू अपना संधान!

दृष्टि सन्तुलित जिस की होगा
उसे सत्य का बोध,
जब तक है आसक्ति बनेगा
दर्शन ही अवरोध

विधना नहीं स्वयं ही रचता
अपना मनुज विधान!

२३ २ ८६

सोने की लंका !

कण से मन भर गया प्राणधन
फिर क्या करूं कनक का ?

मुझे ज्ञात है तेरे उर में
सहज स्नेह की धारा
उस की ही अभिव्यक्ति मात्र है
यह उपहार तुम्हारा,

लेने दो प्रिय उदक मुझे तो
अपने चरण कमल का !

विश्व स्वयं तुम, मैं तो केवल
साथ चल रही छाया,
किया कभी क्रय तो विक्रेता
कह देता भर पाया,

मैं नर, तुम नारायण रक्षक
तलपट सब क्षण क्षण का !

नहीं गांठ में बांधा कुछ भी
रखो न कल की चिंता,
मुझे सतत विश्वास मुझी में
बैठा स्वयं नियन्ता,

सुना न मैं, यों चार कदम पर
ही सोने की लंका !

मझधार !

लिपट गया चंचल लहरों से
मायाकुल मझधार !

मुझे घेरते सतत व्यूह रच
मेरे ही आवर्त,
एक गर्त से निकला, आगे
और दूसरा गर्त,

साथ ले चलो मुझे देख लूं
अपने कूल कगार !

कह देते हैं मुझ तक आकर
माझी धीमी नाव,
सुनकर उनकी बात और भी
गहरा होता घाव,

नहीं डुबा दे, सम्भल सम्भल कर
खेना सब पतवार !

शरण मांगता प्रतिपल मुझ में
भटका नीर अधीर,
बूंदों को विश्वास, ग्रीष्म में
रहता यह गंभीर,

पर कितना असहाय, दीखता
मेरा मुझे न पार !

२७ २ ८६

वीज ।

बीज जगेगा इसे चाहिये
प्रिय की करुणा धार ।

नही सकेगा सजीवित कर
इसे धूप का रूप,
चारु चांदनी, सागर, सरिता
मानसरोवर कूप,

आ सहलाये कपिलवस्तु का
फिर करुणार्द्र कुमार ।

अभी अभी छू इसे गया है
मादक मलय समीर,
खुल न इस के नयन, विमूर्च्छा
है इतनी गभीर ।

मेघ अश्रु से होगा स्पन्दित
पुन हृदय सुकुमार ।

व्यष्टि नहीं यह, इसी बीज मे
कितने बीज अनन्त,
गये और आयेंगे लेन
इस से मोल बसन्त,

सिचन मिले अकिंचन ही यह
वामन का अवतार ।

१८ २ ८६ —

अंतर मंथन !

क्षमा करूंगा स्वयम स्वयम को
पहले मैं पढ़ता लूं !

क्षमा किया तुमने तो मुझ को
पर यह क्षमा अधूरी,
किया न दंडित मुझे
हो गई मेरी पीड़ा गहरी,

समझ लिया तूने अपने को
मैं निज को समझा लूं !

करुणा कितनी अकरुण होती
इसे आज ही जाना,
बाध्य किया अंतर मंथन को
मैंने स्व पहचाना,

तुम अपने को प्राप्त हो गये
मैं अपने को पा लूं !

तुम ने दिया अमूल्य, लगा तब
मैं निर्मूल्य निरर्थक,
मूल्यों को ही समझ रहा था
मैं जड़ सब कुछ अब तक,

दृष्टि मुझे दी उस से अपनी
अंध दृष्टि उजला लूं !

२८ २ ८६

कमल वन !

अनदेखा हो रहा कमल वन
अगम गहन कान्तार !

सौरभ उसकी सुरभि समीरण
पुलकाता मन प्राण,
होता यदि मैं विहग पहुँचता
पल में मार उड़ान,

भरी हिंस्र पशुओं से अटवी
रुकते पग हर बार !

सपन तरते उस सुषमा के
लोचन में दिन रात,
बसे हृदय में नील कमल से
कब होगा साक्षात ?

नहीं दीखती पगडंडी भी
जो जाती हो पार !

हुआ शब्द अंतर में भय है
तेरी गति का बंध,
दृग का तम कान्तार
कमल वन, पहुँचेगा निर्बन्ध,

दृष्टि स्वयं ही पथ बनेगी
होगी जब अविकार !

१ ३ ८६

ऐसी भूल हुई।

पहुँचा मै पीछे
पहले गीत गया,
भेंटूगा क्या मै
मधु घट रीत गया?

दुविधा थी मन म
सहसा ध्यान हुआ,
भर लूंगा तुमको
पुलकित प्राण हुआ,

हारा भी जीता
ऐसी भूल हुई,
काटे सी पीडा
खिल कर फूल हुई।

१ ३ ८६

ढीठ!

दीठ मिली पर जान बूझ कर
बन कर रहा अदीठ,
आये कितनी बार न देखा
मैं हूँ कितना ढीठ?

सुनता रहा तुम्हारी पग ध्वनि
लौट गये प्रभु आप,
इच्छा हुई पुकारूँ, बोला
अहम, रहो चुपचाप,

पर अब जब दृग ज्योति गई बुझ
तुम को रहा टटोल,
मेरी करुण गुहार द्वार वे
निज मंदिर का खोल!

१९८६

दानी!

दिया बहुत तुम ने
छिद्रित थी झोली,
कह न सकी मत दे
इच्छाए भोली,

गये बिखर दाने
धरती के ऊपर,
चुगने मैं बैठा
घिरी घटा अम्बर,

कुटिया मे आया
कर, आने की कल,
लौटा मैं दाने
उग कर हुये फसल।

१९८६

कृपण दर्पण !

कृपण यह
दर्पण !
क्यों खड़े
द्वार पर इस के !
देगा नहीं
कुछ भी अपना
देख भले
निज को तकना !
सठियाये
नहीं गया बचपना ?
आये तुम
बदल बदल
कितने ही मुखौटे
यौवन के, जरा के
दुबलाये, मोटे
पर खायेगी नहीं धोखा
इस की दीठ
भले ही तुम
अपने को ठगना,
करते हैं कुछ तो
याचक भी शरम !
पर तुम बेशरम
व्यर्थ है
तुम को
देना भी उलहना ?

२३८६

कौंधा अकूल।

धन्य भाग आये
मेरे तुम द्वार,
व्यक्त करूं कैसे
मेरा आभार?

सुलभ हुई दुर्लभ
प्रिय पद की धूल,
बन गये चन्दन
बोये बबूल,

बिछुड़ा कब नद से
भूले या कूल,
गहते ही बहिया
कौंधा अकूल।

२५ २ ८६

अपने से जुडो !

तुम अपने से जुडो, चाहते
बनना अगर विराट !

अगर भीड से जुड, खण्ड भर
रह जाओगे ब धु,
नहीं कभी व्यक्तित्व बनेगा
बूद न होगी सि धु,
रहना बने नगण्य न होगा
तिलकित कभी ललाट !

दृष्टि नहीं तो सृष्टि रहगी
केवल ऐहिक बोध,
अ धी होती भीड साथ तू
उस के हुआ अबोध,
तुम्हे मिलेगी पगल कसे
अपन घर की बाट ?

चौराहे पर दिशा भ्रा त से
भले भीड के साथ
करते रहना नारेबाजी
हिला हिला कर हाथ,
पिस जाओगे भीड स्वय है
चक्की के दो पाट !

८३८९

उत्स !

नहीं है
दीपक का
उजियारा
उस का निज का !

नहीं है
फूल की सुगन्ध
उस की स्वय की !

नहीं है
निर्झर का सगीत
उस का अपना !

कहा है
इन का उत्स ?
पूछा मैने
सूर्य से
ऋतुओ से
नगपति से
रहे सब
निरुत्तर
बन गया
प्रश्न ही
उत्तर
मैं ही [redacted]
वह उत्स
जो करता [redacted]
इन सब को
अनुभूत !

१२ ३ ८६

सपना !

जिया है मैंने
अपने मे
एक सपना
भरे हैं जिस मे
जीवन की तूलिका से
इन्द्रधनुषी रग,
अब प्रतीक्षा है
उस प्रभात की
जब इसे
प्रतिबिम्बित करेगी
कुआरे सत्य की
अपलक आख !

११ ३ ८६

दुविधा

सुन पडती है
समीप से
समीपतर आती
तुम्हारी पगध्वनि,
मिलना है मुझे
तुम से
जिस कक्ष मे
लटक रहे हैं
उस की दीवालो पर
मकडियों के जाले,
भरी है चमगादरो की
बींटो की बदबू,
रेंगती हैं
घिनौनी बिस्तुइया
शतपद कनखजूरे,
सोचता हू रोज
झाडने बुहारने की बात
पर जब भी
उठाता हू झाडू
उठ खडी होती है
एक दुविधा
कहा से करू
पहले शुरुआत ?

१२ ३ ८६

महायात्रा !

ब धु !
खोजना पडता है
छोटी छोटी यात्राओ मे
कोई न कोई साथ,
लेना होता है
आवश्यक मार्ग व्यय,
बाधना पडता है
ओढ़ना, बिछौना,
इस के विपरीत
कितनी
निश्चित होगी
यह महा यात्रा
जब नहीं लेना होगा
कुछ भी साथ
नहीं देना होगा
किसी को भी
पहु च का समाचार !

१३ १ ८६

मन्दिर का घण्टा !

आते, जाते
बजाते
भक्त
मन्दिर का घण्टा,
हो जाता भग
नीरवता का शील,
थरथरा उठती
पाषाणी प्रतिमाएं,
कर लेती
आत्महत्या
टकरा कर
प्राचीरो से
प्रतिध्वनिया,
साक्ष्य इस
उत्पीड़न का
केवल
बधिर पुजारी !

१४ ३ ८६

सत् चित् आनन्द!

झर जाते हैं
फूल
रह जाते हैं
स्मृति में
रूप, रंग, रस, गन्ध
यही है
सम्बन्ध
जो नहीं होने देता
मन को निर्बन्ध
चलता है
अहर्निश
मुक्ति के लिये द्वन्द्व
जो पहुँच कर
अपनी चरम परिणति पर
बन जाता है छन्द
जिसका है
उस विराट से अनुबन्ध
जो है केवल
अरूप अखण्ड
सत चित आनन्द!

१८.१.८६

आनन्दमयी वेदना !

आबद्ध है
जो
शब्द के घट मे
अर्थ का
निबंध आकाश
वही है
कृतिकार की
अपूर्ण कृति की
पूर्णता !

बिम्बित है
जो
रेखाओ का
सलवट मे
अनुभूति का
विदेह आभास
वही है
चित्रकार के
अवचेतन की
चेतना !

जुड़ा है
जो
विछिन्न प्राण से
अगोचर प्रणय का
चिद विलास
वही है
अश्रु स्नात
विरहिन की
आनन्दमयी
वेदना !

१८ १ ८६

कसक !

गये भर सभी पुराने घाव
तोर फिर कसे कोई और ?

चुका कर परिचय मेरा प्राण
दरद का अदभुत है आनन्द,
उमड़ते रिस रिस कर दिनरात
हृदय से अमृत वर्षी छन्द,

नहीं है दूजा कोई और
यही है मीरा का चित चोर !

नहीं है मेरे मन की चाह
कि प्रियतम बन जाऊ निर्वेद,
कामना है तो केवल एक
करू मे अग जग को सवेद,

गगन का सायक है यह शून्य
कि उस मे घिरें घटाए घोर !

व्यथा है मौत्तिक मणि अनमोल
कसक है कस्तूरी की गन्ध,
तरगित रखती जीवन नीर
पीर की चचल लहर अमन्द,
फूकता उर की गहरी टीस
मुरलिका रखती मुझे विभोर !

२६ ३ ८६

मृग मन !

आशकित
पल पल
आनन्दित
क्षण क्षण
ऐसा है
प्रियतम
मेरा यह
मृग मन !
आखों मे
दोनों
आखेटक
मधुवन,
कसी है
दुविधा ?
कसा यह
जीवन ?
गहरे मे
उतरो
अपने मे चेतन
धीरे से बोला
मेरा अवचेतन
ओ रे मृग मन !

७४८६

लक्ष्य !

बोते ही
धरती मे
होती है
शुरु
एक ही साथ
पाताल और
आकाश की
ओर
बीज की यात्रा,
जरूरी है
सृजन की
प्रक्रिया मे
सहयोग
अंधकार
और
प्रकाश का
क्योंकि
चेतना का
प्रथम और
अंतिम
लक्ष्य है
समग्र का बोध !

मई १९८३

संशय विस्मय !

मत कर
हर जिज्ञासा का
शब्द से
विनिमय,
चाहिए
जागते रहने के लिये
कुछ संशय
कोई विस्मय !

१२ ६ ७७

सत्य !

नहीं होगी
धरा
शूल विहीन
पहन ले
पदत्राण,

निरर्थक है
तम से
संघर्ष
जला ले
प्रदीप,

नहीं मिलेगी
आकाश की सीमा
पकड़ ले
मिट्टी की मंजिल,

असत्य है
दृष्टि में बसी
भीड़
सत्य है
केवल
अकेलापन !

११ ६ ७१

प्रतिबद्ध दृष्टि।

नहीं टूटा
पात्र
टूटी
प्रतिबद्ध दृष्टि,

नहीं
व्यष्टि
समष्टि
सृष्टि।

क्षति !

मत सौंप
शब्द को
हर विचार,
अनुभूति को
यह क्षति
कर देगी
ऊर्जा को
कोयला !

१२ ६ ७७

आहत अभिमन्यु !

आह, मै
आहत अभिम यु
रहा अटूट
शब्द कौरवो का
व्यूह
नहीं है
पाथ का सत्य
मेरा भोगा हुआ
यथाथ !

१२ ६ ७७

अर्थ की बेड़ियां !

होने के
लिये
सार्थक
चलते हैं
अक्षर
मिल कर,
पहुँच कर
मंजिल पर
छोड़ देते हैं
पीछे
शब्दों की पगडंडियां
बन जाती हैं जो
कट कर
समय के
सन्दर्भ से
अर्थ की बेड़ियां !

उदार शून्य !

देता है
हर अस्तित्व को
अपना
अन अस्तित्व
उदार शून्य !

मृण्मय—चिन्मय !

अय
शब्द के
सुमन की गंध
सूंघते हैं कान
नहीं घ्राण,
होता परिवर्तित
सन्दर्भ के
अनुसार
मृण्मय इंद्रियों का
विषय,
केवल
अपरिवर्तित
वह
जो है
चिन्मय !

१६ ६ ८६

शेष अशेष !

नहीं जानता
कौन सा होगा
मेरा
शेष गीत,
जानता हूँ
केवल यही कि
गा रहा हूँ
उसको
जो है
अपने मे अशेष !

१८ ३ ८६

जीवन बोध

क्षण !

क्षण का
तो
क्षण ही
लेखा,
संवत्सर, वत्सर
संशय की रेखा,
अंगुली पर कैसा
अनगिन को
गिनना ?
तन्मय हो
कर तू
तुझ को जो करना,
बीता सो रीता
आगे है सपना,
सम्मुख जो क्षण है
केवल वह अपना !

११ २ ८६

काल गरुड !

नहीं सिमटते
कभी
काल गरुड के
खुले पंख,
नहीं है
उस का कोई नीड़
जहां बैठ कर
करे
क्षण भर
प्रणय लीला
भरता है
निरंतर उड़ान
होते रहते हैं
उस की वज्र चंचु से
लहू लुहान
बेचारे दिगनाग,
बचा है
केवल शेष नाग
धर लिया है
जिसने
वसुंधरा को
अपने फण पर !

१४.२.८४

विडम्बना !

हवा, धूप
चांदनी, बरसात
सब को है
तुम से प्यार,
चाहती है
छूना, लिपटना, चूमना
पर तुम हो कि
बैठे हो बन्द कर द्वार,
सहचर है
केवल अन्धकार
फंस कर
जिस की गिरफ्त में
हो गये
तुम कितने लाचार
कि टटोल कर ही
कर सकते हो
अपने होने का
अहसास !

१४ ६ ८६

शिलाएं और तृण !

रहो
जहां की तहा
जडीभूत शिलाए,
बह आया
अकिंचन तृण
रत्नाकर तक,

होंगी
अपनी ही
कुठाओ से
क्षयित
एक दिन
डूब जायेगा
होने का
मिथ्या बोध
काल के अतल गभ मे
जहा है
अपरिचय का
निष्ठुर निबिड अधकार !

१३ ४ ८६

गीतो की वापसी !

सोचता था
चले गये सब
शब्द, सुर, गीत
करूं गा अब
मौन से साक्षात
पर हुई क्या बात ?
लौट रहे हैं
बाध कर गोल
परिचित गीतो के बोल
रह गया कौन सा
अनगाया राग ?
गा चुका श्रीराग
भैरवी, प्रभाती, विहाग,
इच्छा हुई
कर लू बन्द द्वार
करू अनसुनी
उन की पुकार
पर आया विचार
खोल कर किवार
पूछ लू
कुशल समाचार
चाहिये था
उन्हें बस
इतना सा अवसर
उलझा कर
बातों मे
आ बैठे अन्दर !

२२ ३ ८६

प्रश्न !

तोड वज्रवत शिलाखड कब
निर्झर आया बाहर ?
जरा जीण जिज्ञासा इसका
मिला न अब तक उत्तर ?

उछल कूद कर कल कल स्वर मे
झरना क्या गाता है ?
मुक्ति गीत या व्यथा शिला की
कहने को आता है ?

शिला स्नेहमय जननी, निर्झर
चचल शिशु प्यारा ह,
पोषित किया उदर मे पहले
फिर फूटी धारा ह !

१६ ३ ८६

फटा हुआ पतंग !

दौड़ती है
भीड़
फटे हुये
पतंग के पीछे
भूल कर
उम्र का हिसाब,
बिना देखे
राह के
गड्ढे, गर्त
उतार चढ़ाव,
केवल आंख में
फटा हुआ पतंग,
थामे हाथ में
टेढ़ी मेढ़ी लकड़िया
लम्बे बांस
कांटेदार छड़िया,
लग भी गया
अगर
किसी के हाथ,
तो मच जाती है
छीन झपट
जाता है फट
बेचारा पतंग
और फिर
बिखर जाती है भीड़
ठठा कर
एक दूसरे पर
यही है
उन सब
दिशाहारा लोगों का हाल
जो दौड़ते हैं
उम्र भर
भीड़ के साथ
बिना जाने
अपने जीवन का लक्ष्य !

१७ ३ ८६

नदी !

सूख गया
उत्स
मर गई
नदी,
शोकाकुल
सागर
खाता रहा
पछाड़
तट पर,
बन गये आंसू
घुमड़ कर
बादल
बरसे
जमकर
जी गई
नदी !

११.३.८६

दिन।

हटाया
सूरज ने
ज्यों ही
अपना कन्धा
भरभरा कर
गिर पड़ा
दिन,
बिखर गईं
नखत किरचें
गगन आंगन में
धरता हूं पांव
संभल संभल कर
शिशु चांद
आयेगी
पौ फटते ही
अनुचरी उषा
कर देगी
बुहार कर
निरापद
आते सूरज का पथ!

६ १ ८६

धूप में गमले।

चाहते हो
अगर
ये पौधे
फूलें फलें
रख दो
उठा कर
धूप में गमले,
बिना खाये
आतप
पहुँचेगा कैसे
फुनगी तक
पानी ?
जरूरी है
हवाओं की
छेड़छाड़
नहीं तो
रह जायेगी
इनकी अबतक
बचकानी,
देखने दो
इनको भी
अपने सर पर
का
खुला आकाश,
करेंगे जब
इन से पक्षी चुहल
खिल उठेंगे
इन के चेहरे उदास,
भोग रहे हैं
अबतक

छाया के नाम पर
ये बेचारे तनहाई,
मिलने दो
इन को
बाहर खड़े हैं
इनके पिता, भाई
देख कर
स्वजन परिजन
सहज ही
उमगेगा
इन का कोमल मन
भर आयेगा फिर
इन को
बहतरीन खुशबू से
तुम्हारा
मुतहा घर
सूना आँगन !

५ ३ ८६

खेला।

खतम हुआ खेला
व्याप गया नीरव,
चले गये दर्शक
साथ रहे अनुभव,

रसना पर मधु था
दृग में थी छलना,
अकरुण थे मन में
अभिनय थी करुणा,

सब थे मुखौटे
क्या बड़े छोटे?
गये घर हाथ में
कुछ सिक्के खोटे।

४ ३ ८६

शब्दों के नचवारे !

पहले स्याही की पोशाक
खड़े हैं कागद पर
पंक्ति बद्ध
घूँदे शब्द
नहीं जायेंगे ये
पुस्तक के पृष्ठों से आगे,
मात्र मंचीय कठपुतले
बंधे हैं जो
अपने नचाने वाले की
डोर से,
होते ही नाच
खतम
लौट जायेंगे
तमाशबीन
कुछ सिक्के
उछाल कर
खाली पेट कर
अपने घर,
रहेगा अकेला
नचवारा
बटोरता
बिखरी इकन्नियां दुअन्नियां,
लाद कर फिर
भाड़े की गधा गाड़ी पर
अपना लटर पटर सामान
चला जायेगा कल
किसी दूसरे गाँव
क्यों कि नहीं है
उसके पास ऐसा कुछ
जिसे देखने के लिये

रोज आये वही भीड़
जो देख चुकी है
यह खेल पहले,
अलग चीज है
पेट की भूख
मन की भूख से
इसे जानता है
यह गवई कठपुतली वाला
पर नहीं स्वीकारते
शब्दों के नचवारे
जिन्दगी के इस
नंगे सच को
और झुठलाते हैं
मन की भूख को
कह कर इसे
बुजवा विचार !

२६ २ ८६

आँख का भरम !

अच्छा, बुरा
आँख का भरम,
वक्त है नरम
वक्त बेशरम,

जब कोयल
कहता है शगुन,
देवता वह
हरे जिसे मन,

सुनो अधिक
बोलो कम,
फकत दुनिया
न खुशी ना गम !

२५ २ ८६

निर्दोष !

पेड नहीं खुद ही
पहते हैं शूल,
हुई बात यह हम
करगे कबूल,

चुभा लिया उन ने
चुभते नहीं हम,
गुस्साते यों ही
इस का बस गम,

झूठे ही मत्थे
मढ रहे दोष,
फूल देख बहके
हुये गुम होश !

२५ २ ८६

पूत कपूत !

दिन को पौनो।
तपुआ रात,
जोम का चरखा
काते बात,

चूक गई डीठ
उलझा सूत,
हुआ कमाऊ
पूत कपूत !

२४ २ ८६

आग मे जवान !

पानी नहीं, सूद बसूद
बहता है ढलान
बैठी है अस्मतें
खोल कर दुकान,

चला गया आदमी
रह रहे मकान,
कविता बनी औरत
आग मे जवान !

२४ २ ८६

गीत का गाव !

भरी दुपहरी मत जा पथी
बठ प्रीत की छाव,
छूट गई तुक की पगडडी
दूर गीत का गाव,

छन्द मुक्त बीहड मे तेरे
भटक थक गये पाव,
कौस्तुभ मणि अनुभूति खो गई
चूक गया तू दाव,

राग रहित अभिव्यक्ति कली वह
जिस मे नहीं सुवास,
लय मे बध कर प्रकृति पहुँचती
स्वय पुरुष के पास !

१४ २ ८६

अनुभव !

बदल गई मुझ से
मेरी ही आंख,
जब चाहा उड़ना
मुकर गई पाख,

धोखे हैं रिश्ते
बनिया है प्यार
देता है सौदा
डंडी को मार,

बहुत मिला महगा
अनुभव अनमोल,
अब रहीं जिन्दगी
बिस्तर कर गोल !

२४२८६

सुधिया के अक्षर '

बैठो भी क्षण भर।
        बात करें मन की,
        बीते बचपन की,
पढ़ लें मिटने से पहले
सुधियों के अक्षर!
        जीते क्या हारे?
        सतरंगे प्यारे
सपन उड़े, चुन लें
कुछ नुचे पंखे पर!
        आते मछुआरे,
        विपक्षित बेचारे,
फँसी नहीं मछरी
रहे हाथ मल कर।
        निंदियाया पनघट,
        उजराया बीघट,
खिलखाती बिजुरी
अगुवाया बादर!

धरती माता !

भू के पुष्ट उरोजों का जो
बनता दुग्ध हिमानी,
वही बह रहा सरिताओं में
जननी अवढर दानी,

सहज वत्सला, सर्व मंगला
ओढ़े साड़ी धानी,
सतत अमृता, सब का रीता
घट भरती कल्याणी,

नमन तुम्हें माँ चिर कृतज्ञ हैं
सकल सृष्टि के प्राणी,
तुम्हीं समझती निज शिशुओं की
अस्फुट तुतली वाणी !

१६ २ ८६

प्रकृति बहुरिया !

बुना हुआ है
रंगीन ऋतुओं से
काल का
अनन्त दुकूल
पहने है
जिसे
पुरुष की बहुरिया
प्रकृति,
ढके हैं
नक्षत्र खचित
सिरे से
शीश,
धुंधिया हिमानी से
उन्नत उरोज,
खोंसे है
कंचुकी में
धानी पल्लू,
बांधे है
कटि में
सलवटी
समन्दरी नीलिमा,
आरक्त लज्जा से
क्षितिज कपोल,
आबद्ध
आलिंगन में
प्रिय के
नहीं होता
क्षण भर भी वियोग
कहा है
कोई और
ऐसी
चिर सुहागिनी
प्रिया ?

६४८६

काल वैशाख !

लगाये
प्रदीप्त ललाट पर
आम्र वनों की
झरित मजरित धूल
आया फिर
काल वशाख,
गर्वित मन
है सूर्य से
उसका रक्त सम्बन्ध,
नहीं समाती
दिशाओ मे
तेजोदीप्त देह
छू कर
कनक चरण
अगुवाई
निष्ठुर हृदय हिमानी,
हुई निस्तब्ध
सुन कर
पद चाप
वाचाल वनानी,
हाथ मे है
उसके
सुदर्शन सा
वात्याचक्र
विक्षुब्ध
शिशुपाल सिन्धु
बोल रहा
महा उद्वेलित
लहरों के मिस
दुवचन

करते ही
मर्य्यादा भंग
काट लेगा छोर
बन कर जो
व्योम का जलद
आ गिरेगा
फिर
विचूर्णित होकर
सत्रासित, संतापित
भू पर !

५.४.८६

वसन्त गीत !

पात हीन विटपों में सहसा
जागी मधु की ज्वाल !
रक्त दीपवत किसलय, कलियां
स्नेहिल लौ अनमोल,
सुरभि ज्योति पर लुट लुट जाते
सांस शलभ पर खोल,
मृदुल कोंपलों के आंचल मिस
ओट कर रही डाल !
तिमिर बन गया कोकिल, गाता
यह उद्दीपक राग,
सुलग उठे कान्तार, धधकती
नव वसन्त की आग,
मलय समीरण व्यजन डुलाता
लहके किंशुक लाल !
प्राण प्राण में आज प्रणय की
दहकी मीठी दाह,
तप्त अधर पर तप्त अधर धर
छक पीने की चाह,
यह मादक उत्ताप सृष्टि के
महा सृजन का काल !

७२८६

गीत !

बह बह कर सूखी
असुवन की नदिया,
कीच हुआ कजरा
आये नहीं पिया,

चुन चुन कर तिनके
फुर उड़ी चिड़िया,
यौवन की बरिन
कसमसती अंगिया,

सौतिन सी सभा
कल न परे जिया,
शलभो सी जल कर
क्यों न बनी दिया !

११ २ ८६

साध्य वेला में झील !

ढलता यह सूरज
सेंदुर की टिकुली,
चंचल मन मछरी
आशा की पुतरी !

गदराया यौवन
शतदल की कुडमल,
फूल लगी काई
पलकों का काजल,

जाता है छूट छूट
लहरों का आंचल,
सावन की सुधि मे
झील विकल विह्वल !

१५ २ ८६

गोधूली !

लाल हुआ सूरज
गुस्से मे पागल,
दौड़ रहे पीछे
ललछौंहे बादल,

सहमी सी सझा
हौले पग धरती,
अखियन मे आंसू
नखतो के भरती,

चन्दा की हसुली
पहने नभ द्वारे,
आई तो सूरज
बिसरा दुख सारे !

१६ २ ८६

गका !

आखा मे कजरा
जूडे म गजरा,
उतरी जब पूनम
गेह हुआ उजरा,

पीढ़ पर बटी
किरण कन लहरा,
चितवन म कोई
सम्मोहन गहरा ?

चौखट पर जागा
कुटिया का दियरा
अनमन हो सिहरा
जोत गई पियरा !

उतरी जब पूनम
गेह हुआ उजरा !

२० २ ८६

वासन्ती !

आई वासन्ती
वातायन खोल,
मेरा मन मितवा
मथ गई हिलोल,

अनुरागे पाटल
रक्ताये कपोल,
मतियाता सौरभ
गधाये घोल,

हीरक से हिम कण
कोंपल हिंडोल,
उड़ उड़ कर तितली
जाती है डोल !

आई वासन्ती
वातायन खोल !

१६ २ ८६

ऊषा !

तिमिर गरल पी
उषा अमृता
क्षितिज मंच पर आती,
अरुण दीप्ति से
दसों दिशाएं
अनुरंजित हो जाती !

सप्त अश्व का
सूरज का रथ
आये इस से पहले,
रक्त-गुलाब
बिछा कर करती
सज्जित पथ मटमैले,

जाग इसी के
इंगित भर से
खग वैतालिक गाते,
ओट हुई
लजवन्ती अरुणा
रश्मि दृष्टि के आते !

२२ २ ८६

सध्या भीलनी !

रही डुबा रवि घट
गगन सर सावरी,
युवती भीलनी
मदमाती बावरी,

फुटिया हैं इन की
दिखते जो तारे,
जलद नहीं बजते
नाच के नगारे,

तिमिर पुरुप काधे
चाद धनुप धारे,
तक तक कर दिन मृग
कितने ही मारे ?

.० २ ८६

धूप !

आने से पहले ऊषा का
ललित अलक्त रचाती
रवि का मगल सूत्र पहन यह
रश्मि चरण धर आती,

धूप रूप की रानी, नन्ही
सोन चिरय्या गाती,
पके धान की स्वर्ण बालिया
पर्ण फूल बन जाती,

अतर के स्नेहिल इगित से
जड हिम को पिघलाती,
क्षिप्र सलिल से उमगा नदिया
काम धेनु रभाती,

कहीं विटप वक्ष तले लेट कर
छाया मिस सो जाती,
झाक खगों के नीड नीड मे
दबे पाव फिर जाती

महल, कुटी, वन, निर्जन सब से
वह अबोल बतियाती,
भुवन मोहिनी, हेम अगिनी
सभमाती घर जाती !

२३ ३ ८६

पावस !

मटियाया हरियल
धरती का आंचल,
देख हुये आकुल
असुवाये बादल,

हुई भ्रमित, शंकित
भोरी मन विद्युत,
दहके दग देखे
सहमा नभ अच्युत,

लपकाती जिह्वा
पड़ी टूट भू पर,
लड़ झगड़ मुहजली
चली गई ऊपर !

१९८६

शिशिरान्त !

पतियाते सूखे
अनमने पत्ते
शिशिर गया सठिया
कठिन दिन बीते,

आती वासंती
अनुगुंजित पायल
लगता है वनप्रिय
चंचल दृग काजल,

विलग हुई हिम से
आलिंगित सरिता
फूटी अभिमन्त्रित
मधुमती कविता !

उन्माई धरती
सुगबुगे कल्ले
पहन रही विटपी
किरमची छल्ले,

सपने सी उड़ती
सतरंग तितली,
सूरज की धुंधली
दृष्टि हुई उजली !

१ ३ ८६

सृजन संगीत[1]

नमन सुमन का
जिसने हँस कर
पतझर को ललकारा है !

पगध्वनि सुन आते सौरभ की
क्रूर शिशिर भयभीत हुआ,
प्रिय वियोग में रोती रति का
रुदन सृजन संगीत हुआ,

नमन दीप को
जिसने जल कर
कहा कहाँ अंधियारा है ?

सूम्य बन गई स्वर्ण रश्मियां
दीपित पथ, घर द्वार हुये,
नभ के तरु के किसलय तारे
मंगल बन्दनवार हुये,

नमन मनुज को
जिस ने उठ कर
दिया क्रान्ति का नारा है !

पौरुष जागे दलित पतित का
शोषण मुक्त समाज बने,
व्यक्ति चेतना पर आधारित
राज स्वयं स्वराज बने,

तोड़ो कुंठा, प्राण प्राण में
बहती अमृत धारा है !

१२.२.८६

बेला फूला रात मे।

नींद भरी पाटल की कुडमल
बेला खिला अकेला,
मावस दइया की गोदी मे
राका शिशु अलबेला,

इस की मादक सुरभि सलोनी
बाल सुलभ किलकारी,
सुन कर जागी हरसिंगार की
कलियां क्वारी प्यारी,

भोर हुये आयेगी मिलने
तितली रूप कुमारी,
गोरे गोरे गाल चूम कर
जायेगी बलिहारी।

४ २ ८६

उत्खनन !

व्यर्थ है
विगत का
उत्खनन,
कहा मिलेगा
शम्बूक का
विछिन्न शिर ?
एकलव्य का
खंडित अंगूठा ?
उग आया है
पौराणिक ठूठों पर
प्रतीकों का
सघन जंगल,
नहीं है
वर्तमान का
समाधान
अनजाने
अतीत की समीक्षा,
सुनो
अपने ही
अंतर के
सत्य को
मात्र
स्थितियां ही हैं
युग धर्म की
परिभाषा !

दिसम्बर ८१

सखि, कितने दिन और !

सखि, कितने दिन और !
नाचेंगे यों ही बिना मेघ मोर !
सखि, कितने दिन और ?
धरती है गूंगी
बहरा आकाश,
समय के द्वारे
बैठा विश्वास,
रातों के घर में सोयेंगे भोर !
सखि, कितने दिन और !

अजगर से पथ के
चंगुल में गांव,
सहमे से मृग के
छौने से पांव,
अधरों की चुप ने गीत लिये चोर !
सखि, कितने दिन और !

बैठ गई सर के
गहरे में प्यास,
कहती है तट से
लहरें उदास,
हम तुम को बांधे अनदेखी डोर !
सखि कितने दिन और !

४ ६ ७८

सूरज !

झर गया
पक कर
सूरज
साझ के खेत मे
हो उठे
अकुरित
अँधेरे की माटी मे
सितारे !

सोचो क्षण भर !

भग करने से
पहले
नीरवता को
सोचो
क्षण भर,
क्या
इस मे भी
अधिक
सौम्य हैं
तुम्हारे शब्द,
अगर
नहीं
तो कर दो
समर्पित
अशब्द को
अपनी
अस्मिता !

प्रयास !

ध्येय है
बीज को
तोड कर
वक्ष को
बाहर निकालने का
प्रयास,
चाहते
अगर विकास
रख कर विश्वास
सौंप दो
रेत को
माँगेगा अंतस्तल
जागेगा मूल
फूटेंगे किसलय
महकेंगे फूल !

३० ११ ८१

सजीवन !

नहीं कर
सकता
प्रदीप्त
निष्प्रभ दीप को
प्रचण्ड सूर्य्य
चाहिये
मृत्तिका को
सजीवित
करने के लिये
स्नेह की
छुअन !

चेतना का हाथ !

बुरा नहीं है
भीड़ का
साथ
अगर थामे
रहो
अपनी
चेतना का हाथ
क्यों कि
आते ही चौराहा
चुनना होगा
तुम्हें स्वयं
अपनी
मंजिल का पथ !

रोबोट !

कर देगा
निश्चित रूप से
हल्का
तुम्हारे
श्रम का भार
यह
रोबोट
पर नहीं
सहला सकेगा
जीवन की पीड़ा
क्यों कि
नहीं है
इसके अनुभूति शून्य
संगणक में
संवेदना की
शिरा !

लोग

शीत से
ठिठुरते हुये
लोग
आये मांगने आग,
दे दिया गया
उन्हें
आग का चित्र,
रख कर उसे
घास फूस पर
करने लगे वे
उठने वाली
लपट की प्रतीक्षा !

प्यास से
व्याकुल हुये लोग
आये मांगने
जल
दे दिया गया
उन्हे
नदी का चित्र,
टाक कर
उसे खूटी पर
करने लगे वे
लहर के आने का
इतजार !

भूख से
त्रस्त हुये लोग
आये मागने अन्न
दे दिया गया
उन्हे
क्रांति का घोषणा पत्र
रख कर उसे
चूल्हे मे
देखने लगे वे
रोटी के
आने की राह !

तूणीर !

नहीं कर
पाया
मृगवत दौडते
क्षण को
एक भी
शब्द-शर
विद्ध
हो गया
यों ही
रिक्त
सासों का तूणीर !

सत्य !

भरी है
असफलताओं ने ही
उपलब्धियों के
राजमहल की नींव,
हो जाता है
जब यही सत्य
आँख से ओझल
तो डूब जाता है
समय की
गर्दिश में
आस्था का सूरज
श्रद्धा की चाँदनी,
रह जाते हैं
कुआँरे
इतिहास के पन्ने !

पूस का दिन !

बर्फ के
पहाड़ सा
पूस का दिन,
अधमरा सूरज
हवाएं नागिन,
दंशित पोर पोर
चटखने साझ भोर
ठिठुरती आग की
बंध गई घिग्घी
तीलियाँ चिड़चिड़ी
साधे हैं चुप्पी
कर रहा रगड़ फूंक
आदमी ज़िद्दी
टुंड्रा के
उजाड़ सा
पूस का दिन !

४ ५ ८६

मार्गशीर्ष !

महाकाल की
झंकृत
ऋतु-वीणा का
मध्यम छन्द,
संयोगी
प्राणों के
मधु उत्सव का
ललित निबन्ध
मार्गशीर्ष !
होते ही
नीरव
सहस्राक्ष के
अन्तःपुर में
नश्वरता
केका कंठी
पावस के
नूपुरों का
रणन-क्वणन
आया
खंजन-नयन
मार्गशीर्ष
झरा
धरा की
हरित गोद में
नन्दन वन का
कनकोज्ज्वल
मन्दार सुमन
मार्गशीर्ष !

१६.५.८६

आश्विन '

आता
अलका से
सौम्य क्वार
गधाते सासो मे
मौलसिरी, हर्रसिंगार
खोल रहा
उन्मादिन पावस के
विजडित मेघ द्वार,
थामे
च चल
शिशु शरद हाथ
उडता शुभ
नीलकठ
शकुन साथ,
करती अर्पित
मधुक्षीरा धरती
स्वण धान,
पुलकित मन
हृदय, प्राण
कर्पूरी सुरमई
भोर साझ,
बजते मदिर मे
शख झाँझ
गुजित भक्तो का
कठ नाद
जय रघुनाथ
जय रघुनाथ '

२४५८५

कार्तिक !

किस की
अंगुली की
अनछुई छुअन ?
खोले सपनाती
धरती ने
धौले रतनारे
कमल-नयन
खिल खिल कर
हँसते कार्तिक का
धवल हास
ये काश विजन,
फूटे जो
अस्फुट प्रणय बोल
वे निशिगन्धा के
मदिर सुमन,
जागे कविता मे
बाल्मीकि,
तमसा तट पर
क्रौंच मिथुन
सहलाता प्रिय
प्रिया पंख
विह्वल कंठो में
रति-कूजन,
दिन शोभित
जसे
महाकाल की
वेदी पर
रजत शंख,
युवती सध्याए
उर्मिया
ले दीप हाथ
करती नर्तन
बरसाता
दीपोत्सव
कंचन !

दिग्भ्रम!

बनता है
बीज
पहले मूल
फिर
शाखा, किसलय, फूल
पर
आदमी की भूल
बिना मूल
चाहता फूल,
होकर विफल
बन जाता गरल
विकृत अहम्,
भ्रमित शक्ति
करता वंचित
उन को
जो रहे कभी
उसकी देह,
खोजता
कुंठाओं के विवर
मन विषधर।

एक और शर।

बन जाती है
क्षण भर में
आखेटक की आल
निर्जीव
तीर की आल,
बेध देती है
क्रीडारत
वन्य जीवों का
कोमल मम-स्थल,
पड़ी है वह
मुख में
हरित दूब दावे
मृत
मृग शावक की
कंचन देह
झर झर कर
झरते हैं
समीप ही खड़ी
मृगी के
स्नेहाकुल नयन,
टटोल रहे हैं
हत्यारी दृष्टि के
अन्धे हाथ
तूणीर में
एक और शर।

२७८६

स्वभाव और अनुभूति !

कर लेता है
अपने
सहज स्वभाव से
प्रशस्त
निर्झर
गतव्य तक
पहुचने की
राह !

कैसे हो
सिंचित
सूखते धान
कुम्हलाते उद्यान
यह है
चिंत्य उसका
जिस को बोध है
अपने होने का !

२१ ६ ८१